ज्ञान तत्व अंक 153

(क) लेख– क्षेत्रीयता में राजठाकरे की भूमिका

(ख) कार्यालयीन प्रश्नोत्तर, ईमाम हुसैन जब कर्बला में दुश्मनों से घिर गये थे तो उन्होंने भारत आने की इच्छा व्यक्त की थी।

(ग) श्री अमर सिंह जी आर्य, किसान संकट में सरकारी उपेक्षापूर्ण नीतियॉ और रवैया का हल वास्तविक आय में वृद्धि।

(घ) शिक्षा समाजशास्त्रियों का विषय है शिक्षा शास्त्रियों का नहीं।

(च) कृत्रिम उर्जा सस्ती होने।

(छ) (ज) स्वदेशी समाचार। वृंदावन में स्वदेशी राजनीति और संविधान पर चर्चा।

(क)क्षेत्रीयता में राजठाकरे की भूमिका

समाज को वर्ग विद्वेष वर्ग संघर्ष के आधार पर निरन्तर विभाजित करने के जो आठ आधार माने जाते हैं उसमें क्षेत्रीयता का भी एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। वैसे तो पूरी दुनिया में क्षेत्रीयता को बहुत महत्व प्राप्त होता है, किन्तु भारत में तो इसे विशेष माध्यम के रूप में उपयोग किया जाता है। समय–समय पर सभी राजनैतिक दल क्षेत्रीयता के मारक प्रभाव का लोहा मान चुके हैं। यही कारण है कि कभी–कभी न चाहते हुए भी राजनैतिक लाभ के लिए क्षेत्रीयता का उभार राजनैतिक मजबूरी बन जाता है।

उत्तर प्रदेश में किसान नेता महेन्द्र सिंह टिकैत और मायावती द्वारा जातीय आधार पर वर्ग विद्वेष फैलाने वाले नाटक का रिहर्सल आपने देखा ही होगा। मुझसे बार–बार पूछा जाता है कि दोनों मे से किसे लाभ हुआ और किसे हानि। यह भी पूछा जाता है कि दोनों में से कौन सही है और कौन गलत। मै समझता हूॅ कि प्रश्नकर्ता का प्रश्न ही गलत है, क्योंकि विचारणीय दो वर्गो में मायावती और टिकैत कोई भिन्न–भिन्न वर्ग नहीं हैं। दोनों एक ही नाटक के अलग–अलग पात्र मात्र हैं। किसी नाटक में पात्र के रूप में भाग लेने वाला सदा लाभ में ही रहता है। इस जातीय संघर्ष के नाटक में टिकैत और मायावती दोनों को ही लाभ हुआ है। टिकैत की भी जाट शक्ति का ध्रुवीकरण हुआ है और मायावती की भी जाटव शक्ति मजबूत हुई है। दोनों के कुछ राजनैतिक उद्धेश्य हैं। दोनों का वोट बैंक मजबूत हुआ है। कुल मिलाकर हानि तो हम सबकी हुई है जिनकी सामाजिक एकता भी कमजोर हुई है और आर्थिक व्यवस्था भी। हरी–हरी दूब खाने के स्वतंत्र अधिकार के चक्कर में संघर्षरत दो छुट्टा सांड़ बगीचे की जो दुर्दशा करते हैं वह हाल हम सब अनुभव कर सकते हैं।

क्षेत्रीयता को भी वर्ग संघर्ष के रूप में राष्ट्रीय स्वरूप देने का राजठाकरे का प्रयत्न कोई पहला प्रयत्न नहीं है। इसके पहले भी पंजाब, हरियाणा, असम में ऐसे सफल प्रयत्न हो चुके हैं। महाराष्ट्र में बालठाकरे ने तो इसी प्रयत्न को अपना एकमात्र आधार बनाकर अपनी राष्ट्रीय छवि बनाने में सफलता पाई जो अब तक बनी हुई है। राजठाकरें को बालठाकरे के साथ काम करने का पूरा–पूरा अनुभव था। राजठाकरे को क्षेत्रीय भावना के मारक प्रभाव की भी जानकारी थी और

यह भी पता था कि इसके विचार का आसान मार्ग क्या है। राजठाकरे का उद्धेश्य राजनैतिक था। राजठाकरे न कभी सामाजिक रहे हैं न है। येन–केन –प्रकारेण स्वयं को राजनैतिक संघर्ष में स्थापित करने के लिए महाराष्ट्र में क्षेत्रीय टकराव पैदा करना सबसे आसान मार्ग था और बालठाकरे के साथ काम करते–करते उनको पर्याप्त अनुभव भी हो गया था। इसलिए राजठाकरे ने इस घातक शस्त्र का उपयोग किया। अन्य कई प्रकार के प्रयत्नों में माथापच्ची के बाद जब राजठाकरे को महसूस हुआ कि वे गुमनामी में जा रहे हैं तो उन्होंने इस शस्त्र का उपयोग किया। कांग्रेस पार्टी जानती थी कि महाराष्ट्र की राजनीति में राजठाकरे का यह प्रयास बालठाकरे को कमजोर करेगा इसलिए कांग्रेस पार्टी ने इस प्रयत्न को रोकने का कोई प्रयास नहीं किया। हो सकता है कि अन्दर–अन्दर कुछ और भी बात हो, क्योंकि अन्दरखाने की बातें तो वर्षो तक पता नहीं चल पाती। राज ठाकरे ने जैसा सोचा था वैसा ही हुआ। बाल ठाकरे कमजोर हुए पूरे भारत के अनेक उत्तर भारतीय नेताओं को बैठे ठाले रोजगार मिल गया। बिलों से निकल–निकल कर नेता जन्तर–मन्तर तक पर दिखाई देने लगे। पक्ष–विपक्ष में बयान और प्रदर्शन शुरू हुए।

लालू प्रसाद और रामबिलास पासवान ऐसे अवसरों की पहचान करने में सबसे अधिक चुस्त–दुरूस्त माने जाते हैं। उमा भारती भी इस मामले में चालाक मानी जाती हैं किन्तु अभी तात्कालीक परिस्थितियों के आधार पर वे लालू पासवान से मुकाबला नहीं कर पाती हैं। लालू पासवान ने तुरन्त ही सक्रियता दिखाई और वे उत्तर भारत और बिहार का प्रतिनिधित्व करने लगे। लालू प्रसाद ने तो यहॉ तक कह दिया कि ''यदि महाराष्ट्र में ऐसा ही होता रहा तो हम और अधिक मात्रा में बिहार के लोगो को महाराष्ट्र भेजेंगे।'' प्रश्न उठता है कि लालू प्रसाद के ऐसे बयान की पूरे भारत में आलोचना क्यों नहीं हुई? क्या बिहार के लोग अन्य प्रदेश में किसी योजना के अन्तर्गत जाते हैं? लालू पासवान की जोड़ी ने राज ठाकरे द्वारा लगाई गई आग में अपनी–अपनी रोटी सेंकने तक ही स्वयं को सक्रिय रखा यह स्पष्ट हैं।

अभी –अभी असम में बिहारी श्रमिकों के साथ अत्याचार हुआ। महाराष्ट्र में भी मुख्य निशाना उत्तर भारतीयो पर था, किन्तु बिहार ही आगे रहा। इस सम्पूर्ण विवाद में राज ठाकरे जैसे टटपुंजिए नेता सफल हो गये इसमें क्या कहीं बिहार के लोगों की भी भूल है? पिछले दिनों दिल्ली की मुख्यमंत्री शीला दीक्षित ने एक साधारण सा बयान दिया था जिससे दिल्ली में रहने वाले बिहारियों की भावनाएं भड़क गई। दिल्ली के उपराज्यपाल खन्ना जी ने मात्र इतना ही तो कहा था कि दक्षिण भारतीय उत्तर भारतीयों की अपेक्षा अधिक कानून का सम्मान करते हैं। यह बात तो मैंने भी अनुभव की है। इस सच्चाई के आधार पर शर्म महसूस न करके आप की भावनाऍ क्यों भड़क जाती हैं? बेचारे उपराज्यपाल को इस छोटी सी बात के लिए आपके नेताओं ने जलील किया और आप चुप रहे। दिल्ली की मुख्यमंत्री शीला दीक्षित ने मात्र यही तो कहा था कि दिल्ली में समस्याऍ बढ़ने का एक कारण दिल्ली में बढ़ती आबादी का दबाव भी है जिसमें उत्तर भारतीय अधिक मात्रा में आ रहे हैं। इसमें ऐसी कौन सी अपमानजनक बात हो गई कि आपकी भावनाऍ भड़क गई। शीला जी स्वयं उत्तर भारतीय और बाहर की नहीं होती तब तो आप क्षेत्रीयता का आरोप भी लगा सकते थे किन्तु वे स्वयं बाहरी हैं। फिर आप भड़क कैसे गये। उपराज्यपाल ने अनिवार्य परिचय पत्र का मुद्दा उठाया तो उसके गुण –दोषों पर चर्चा न होकर

''बिहार के लोगों को कठिनाई होगी '' जैसी भाषा दिल्ली में भी राज ठाकरे पैदा कर सकती है प्रश्न यह नहीं है कि राज ठाकरे का बयान उचित है या अनुचित। क्योंकि राजठाकरे का बयान तो गलत है ही। विचारणीय प्रश्न यह है कि आप हर जगह अपनी भावनाओं को काबू में क्यों नहीं रखते? और यदि आप हर जगह अनावश्यक विवाद पैदा करते रहेंगे तो राज ठाकरे सरीखा कोई चालाक ऐसे बदनाम वर्ग पर अत्याचार करके अपनी राजनैतिक रोटी सेकेगा और शेष भारत तमाशा देखेगा। ये लालू पासवान राजठाकरे, बालठाकरे सरीखे लोगों को न बिहार से मतलब है न महाराष्ट्र से। इनको मतलब है अपना राजनैतिक वोट बैंक मजबूत करने से इसलिए इनके जगजाहिर स्वार्थ से आप बच सकें तो बहुत अच्छा हो?

मैं आपको सतर्क करना चाहता हूँ कि अभी क्षेत्रीयता का मुद्दा गरम है। थोड़े दिनों बाद महंगाई का मुद्दा गरम किया जायेगा। संभव है कि हिन्दुत्व और इस्लाम को भी टटोला जाए। हर राजनेता की गिद्धदृष्टि आपके वोट बैंक पर लगी है। इसलिए ऐसे मुद्दो से सावधान रहने की आवश्यकता है।

(ख)कार्यालयीन प्रश्नोत्तर

ज्ञानतत्व अंक एक सौ सैंतालीस में आचार्य पंकज जी ने महत्वपूर्ण तथा उपयोगी लेख लिखा। उन्होंने लिखा कि इमाम हुसेन जब कर्बला में दुश्मनों से घिर गये थे तो उन्होंने भारत आने की इच्छा व्यक्त की थी। उस समय इमाम की सहायता के लिए भारत के ब्राम्हणों की एक सेना भी गयी थी जो समय तक वहॉ नहीं पहुँच सकी। पैगम्बर मुहम्मद ने भी एक बार कहा था कि वे हिन्द से आ रही सुगन्ध को महसूस कर रहे हैं।

प्रश्न उठता है कि जब उस समय इतना भाईचारा था तो आज इतनी नफरत क्यों? इस नफरत में इस्लाम अधिक दोषी है या हिन्दुत्व। इस नफरत में मुसलमानो की भूमिका क्या है और संघ की क्या है? आपकी राय में समाधान क्या है?

उत्तर — प्रश्न बहुत व्यापक और बड़ा है, फिर भी मैं संक्षिप्त में समेटने का प्रयास करूँगा। आचार्य जी ने हजरत मुहम्मद और इमाम हुसैन के भारत संबंधी विचारो के जो संदर्भ दिये उनके प्रमाण देना मेरे लिए संभव नहीं, क्योंकि मेरे लिए तो स्वयं ये बातें सुनी सुनाई ही हैं, किन्तु आचार्य पंकज जी की विद्वता पर मुझे पुरा विश्वास होने से मैं कह सकता हूँ कि ये बातें सच ही होगी। हजरत मुहम्मद का कथन या भारत की हिन्दू सेना का वहॉ जाना एक विलक्षण ऐतिहासिक घटना है जिसे कट्टरवादी मुसलमान भी छिपाना चाहते है और कट्टरवादी हिन्दू भी।

उस समय का भाईचारा नफरत में बदला इसके लिए एकमात्र दोष उसके बाद आने वाले कट्टरपंथी मुसलमानों का ही है। इन्होंने धीरे–धीरे इस्लाम को संगठन का रूप दे दिया। संगठन के कुछ गुण और कुछ दोष होते हैं। संगठन संख्या विस्तार के लिए छीना–झपटी पर जोर देता है। संगठन न्याय के स्थान पर अपनत्व का मार्ग अपनाता है। संगठन गुणों के साथ समझौता कर लेता है, किन्तु संख्या विस्तार को ध्यान में रखता है। संगठन अधिक आसानी से सफलता की ओर बढ़ता है और अन्य सबको पछाड़ देता है। संगठन तब तक संकट में नहीं पड़ता जब तक कि उसके विरूद्ध अन्य लोग उससे अधिक बड़ा संगठन नहीं बना लेते।

इस्लाम ने संगठन के रूप में पूरा–पूरा लाभ उठाया है। उसने भरपूर विस्तार पूरी दुनिया में और भारत में भी किया है। मुसलमानों ने भारत में नफरत पैदा नहीं की किन्तु संख्या विस्तार के लिए उनके संगठित प्रयासों ने भारत में नफरत का विस्तार किया। स्पष्ट है कि इस्लाम भारत में सफल भी रहा है।

इस्लाम के विरूद्ध कोई मजबूत संगठन बनने में सबसे बड़ी बाधा है संघ। संघ ने मुसलमानों के समक्ष भारत में अपना बहुमत समझकर हिन्दू संगठन का प्रयत्न किया, किन्तु संघ भूल गया कि वह पूरे विश्व में इस्लाम के समक्ष संख्याबल में कमजोर है। मुसलमानों ने भारत में संघ के विरूद्ध अन्य को एकजुट रखने की चालाकी की, किन्तु संघ ने इस्लाम के विरूद्ध विश्व को एकजूट होने में बाधा पैदा की। आज भारत में संघ मजबूत हुआ है और इस्लाम भी मजबूत हुआ है, किन्तु हिन्दू या हिन्दूत्व कमजोर भी हुआ है और हो भी रहा है, क्योंकि संघ के पास सामाजिक एकता को तोड़ने की तो ताकत है, किन्तु जोड़ने की नहीं। वह सिर्फ हिन्दू एकता तक ही सीमित है जो मुस्लिम एकता के समक्ष भारत में भले ही मजबूत हो जाती, किन्तु विश्व में तो अभी हो ही नहीं सकती।

मुझे दया आती है संघ वालों की सोच पर। दुनिया भर में राजतंत्र के विरूद्ध लोकतंत्र की हवा चल रही है। लोकतंत्र के विरूद्ध लोक स्वराज्य की हवा चलनी चाहिए । नेपाल में राजतंत्र के विरूद्ध लोकतंत्र की आंधी चली। हमारे संघ वालों को पता नहीं क्या सूझी कि उन्होंने लोकतंत्र के विरूद्ध राजतंत्र का पक्ष लिया। नेपाल हिन्दू राष्ट्र है। क्या इसका अर्थ यह मान लिया जावे कि हिन्दू संस्कृति राजतंत्र की पक्षधर है? लोकतंत्र विफल ही होगा यह सच है। नेपाल में भी होगा ही। किन्तु लोकतंत्र के स्थान पर ग्राम गणराज्य परिवार गणराज्य व्यवस्था हिन्दुत्व के अधिक निकट है या राजतंत्र। पूरे भारत में लोकतंत्र के विकल्प के रूप में लोक स्वराज्य प्रणाली को मजबूत करने का विचार मंथन चल रहा है। किन्तु संघ के लोग आज भी बात करते हैं हिन्दू राष्ट्र की ओर व्यक्त करते हैं कि हिन्दू राज्य धर्म निरपेक्षता हिन्दू राष्ट्र का अनिवार्य गुण है। इसके अभाव में हिन्दू राष्ट्र हो ही नहीं सकता। धर्म निरपेक्षता इस्लाम के बिल्कुल विरूद्ध है। ऐसे साम्प्रदायिक सोच वाले तत्व साम्यवाद से भी तालमेल बिठा लेते है और कांग्रेस से भी। मुसलमानों के साथ तालमेल करने में न कांग्रेस की धर्मनिरपेक्षता को कठिनाई है न समाजवादियों को। इसका कारण न कांग्रेस है न समाजवादी। इसका कारण है संघ। इस्लाम जहॉ सत्ता में आता है वहीं अपना खूँखार चेहरा प्रकट करता है। संघ वाले सत्ता में आने के पूर्व

ही अपना साम्प्रदायिक स्वरूप प्रकट करने लगते हैं। इससे उनकी सत्ता के भी अवसर दूर होते हैं, और हिन्दुत्व को तो अपार क्षति होती ही है।

इस्लाम और साम्यवाद के बीच दूर–दूर तक कोई वैचारिक सामंजस्य नहीं है किन्तु लोकतंत्र के विरूद्ध दोनों हर जगह एक हो जाते हैं। क्या कारण है कि संघ इतनी सी लचक पैदा नहीं कर पाता। मेरा स्पष्ट मत है कि संघ राजनीतिक स्वार्थ के लिए हिन्दू एकता का नारा बन्द कर दे और यदि उसे हिन्दू एकता बनानी है तो राजनैतिक स्वार्थ छोड़ दें।

मेरी मुसलमानों को भी सलाह है कि वे भविष्य के खतरों को समझें। दुनिया उनके विरूद्ध एकजुट हो रही है। यदि भारत का हिन्दू जनमानस भी उस दिशा में झुका तो आपको न साम्यवाद काम आयेगा न गॉधीवाद। आपके समक्ष अस्तित्व का संकट पैदा हो सकता है। आप आचार्य पंकज जी के एतिहासिक दस्तावेज की पृष्ठभूमि का उपयोग करें और कम से कम भारत को विश्व जनमत के साथ जुड़ने में रोक लें।

अभी–अभी अप्रैल माह में ही पाकिस्तान में कुछ सामान्य मित्र आपस में चर्चा कर रहे थे जिसमें एक हिन्दू सहपाठी ने मुहम्मद साहब के विरूद्ध या तो कुछ कह दिया या उस पर झुठा आरोप लगा। मुस्लिम दोस्तों ने अपने साथी की पीट–पीटकर हत्या कर दी। मृतक हिन्दू के भाई ने कहा कि पाकिस्तान में ऐसे मारने वाले मुकदमें में मृतक के वाक्य को भी प्रमाणित कर देंगे और हत्या के लिए पुरस्कृत भी हो जाएंगे। क्योंकि कानून में प्रश्न मारना न होकर मारने के कारण से जुड़ा है। मैने भी जब बीबीसी से यह घटना सुनी तो मेरा सिर शर्म से झुक गया कि आज की दुनिया में भी ऐसे–ऐसे राष्ट्र हैं जहॉ ऐसे–ऐसे एकपक्षीय कानून जिन्दा हैं। अब इन दकियानूसी प्रावधानों का विरोध करने की मुसलमानों को पहल करनी चाहिए अन्यथा भविष्य में क्या होगा यह अभी से कहना ठीक नहीं।

प्रश्नोत्तर

(ग)प्रश्न –1. श्री अमर सिंह जी आर्य, सी–12 महेश नगर, 80 फुट रोड जयपुर राजस्थान।

किसान की स्थिति एक दिन में नहीं गिरी, किसान एक दशक से आत्महत्या कर रहे हैं, किसान संकट सरकार की नीतियों और उपेक्षापूर्ण रवैये का परिणाम है। समस्या का हल किसानों की वास्तविक आय में वृद्धि है।

केन्द्र का आम बजट संसद में 29 फरवरी को प्रस्तुत किया गया जिसमें किसानों के 60 हजार करोड़ ऋण माफी की घोषणा की गयी। तब से ही टी0वी0 चैनल्स पर चर्चा एवं अखबारों में अनेकों लेख आ चुके है। कृषि की दशा एक दिन में नहीं गिरी। उदारीकरण के दौर से कृषि विशेषज्ञ एवं जागरूक अर्थशास्त्री चेतावनी देते रहे हैं, परन्तु उन पर कान नहीं दिए गए। अतः

कृषि संकट स्वयं सरकारी नीतियों और उपेक्षापूर्ण रवैये का परिणाम है। हम सब जानते हैं कि कृषि विकास दर में वृद्धि दर 60 से 80 के दशकों में जनसंख्या वृद्धि के अनुपात से अधिक रही, हम वर्ष 2003 तक गेहूँ सहित अनेक कृषि उत्पाद निर्यात कर रहे थे। कृषि में गिरावट के स्पष्ट लक्षण बाजपेयी सरकार के समय में सामने आ गये थे। बजट चर्चा में राजीव कुमार निदेशक ICRIER ने घटती कृषि विकास दर पर चिन्ता प्रकट की, परन्तु वे पेट्रोल, डीजल मूल्य वृद्धि से ज्यादा चिन्तित नजर आए। JNU चासलर भट्टाचार्य ने कृषि उन्नति को देश के विकास में महत्वपूर्ण कारक माना है। गत दशकों में प्राप्त कृषि प्रगति के कारण ही देश उद्योग मे उच्च विकास दर प्राप्त कर सका। बिना कृषि की उन्नति के उद्योग जगत की वृद्धि दर स्थायी नही रह सकती। उदाहरण के तौर वर्ष 2007 –2008 में औधोगिक विकास दर 8.7 प्रतिशत रही जबकि गत वर्ष 2006–2007 मे विकास दर 9.7 रही थी। उदारीकरण के दौर से ही कृषि विशेषज्ञो ग्रेंट एग्रीमेन्ट, पेमेन्ट कानूनों W.T.O मुद्राकोष विश्व बैक के बढ़ते प्रभाव और हमारी शिथिलता भारतीय खेती को निगल जाने की चेतावनी देते है। वर्ष 1999 के नवम्वर माह में सार जे. मौर्य (से.नि.) संयुक्त कृषि, भोपाल ने एक लेख के जरिये ग्रेट एग्रीमेट एवं विश्व संस्थाओं के दबाव से खेती पर पड़ने वाले प्रभावो का विश्लेषण किया था और खेती की सुरक्षा के उपाय सुझाए थे, परन्तु सरकार नहीं चेती और मौर्य जी की चेतावनी सच सिद्ध होती गयी।

सरकार जानती है कि कृषि का संकट खुद उसकी नितियों और उपेक्षापूर्ण रवैये का परिणाम है। ऋणमाफी से किसानों की थोडी राहत जरूर मिलेगी परन्तु यह समाधान नही है स्थायी समाधान हेतु कृषि की दीर्घकालिक नीतियां बने ,भूमि ,उवर्रता, बढ़ाने के उपाय उत्तम बिजो का बिकास, बरानी फसलों के बीजों में शोध ,सिचाई बिजली मे बढ़ोतरी के उपाय। कृषि की पुरी क्षमता का विकास तभी सभंव है जव वर्ष 2007 की राष्ट्रीय किसान नीति में किये गये वादे ,ईमानदारी से पूरे किये जाए । इस नीति मे वादा किया गया था कि कृषि विकास का पैमाना किसानों की वास्तविक आय को माना जायगा। यह सब संभव होगा जब फसलों के लाभकारी मूल्य किसानो को मिले।

देर आये दूरूस्त आये सरकार के कदम को स्वागत है, परन्तु किसानों की उन्नति के स्थायी उपाय किये जाये जिससे किसान की आय में वृद्धि हो वह बाजार के बढते अन्य वस्तुओं के भावो के अनुपात मे लाभ पाये, ताकि समाज में सम्मान के साथ रह सके।

यह विषय अधिसंख्या जनता से जुड़ा महत्वपूर्ण मुद्दा है अतः इच्छुक जनों से विचार आमंत्रित है।

(घ)प्रश्न –2 ज्ञानतत्व के अंक 130 पृष्ट – 10 शिक्षा समाजशास्त्रियों का विषय है शिक्षा शास्त्रियों का नहीं। वर्तमान की स्थिति से आप परिचित है। आधुनिक शिक्षा में सरकार का पूरा हस्तक्षेप है। अंशतः शिक्षा शास्त्रियों की परन्तु समाज का शिक्षा में कोई सम्बन्ध नहीं वर्तमान संविधान के शिक्षा नीति निर्देशन तत्वों का ही भाग है। आप द्वारा जो संविधान प्रस्तावित है उसमें अनुच्छेद 1 से 165 तक शिक्षा पर एक लाइन भी पढ़ने में नही आया मैकाले की शिक्षा नीति की

आलोचना नेता से लेकर शिक्षाविद् प्रशासन, समाज में 60 वर्षो से करते आ रहे है, परन्तु किसी ने भी शिक्षा पद्धति क्या हो कोई प्रस्ताव नहीं आया।

(1)आप शिक्षा से चरित्र निर्माण या समाज में नैतिक मूल्य आते हैं, से शायद भिन्न विचार रखते हैं। जितने चिन्तक हुए शिक्षा पर स्पष्ट मत नहीं रखते केवल महर्षि दयानन्द ऐसे चिन्तक हुए जिनके शिक्षा पर स्पष्ट मत दिखे मेरी सभी से प्रार्थना है कि साम्प्रदायिक चश्में से इस बात को न देखा जाए।

दयानन्द जी से सत्यार्थ प्रकाश में शिक्षा का जो मार्ग बताया उससे चरित्र निर्माण होता है। आधुनिक शिक्षा केवल अक्षर ज्ञान कराती है। आपके व अन्य किसी विद्धान के विचार जानने का आकांक्षी रहूँगा। आज समाजशास्त्र क्या शिक्षा शास्त्री सभी भ्रमित लगते हैं।

(2)इसी अंक में श्री विनय जैन, जबलपुर ने पृष्ठ 26 पर संविधान पुनर्लेखन विषय पर प्रश्न उठाये है, तमिलनाडू का 69 प्रतिशत आरक्षण कानून आएगा। स्वर्णसिंह कमेटी 1968 के गोलकनाथ केस, संविधान की नवी अनुसूची का उल्लेख है। आपने अपने उत्तर में संविधान नागरिक शास्त्र का विषय बताया। कानूनविद्ों के संशोधन पर भिन्न मत है। कानून विद् या सुप्रीम कोर्ट संविधान का मूल ढांचा क्या है पर एक मत एवं स्पष्ट राय नहीं रखते। वर्तमान संविधान की व्याख्या की बात एक मिनट को छोड़ भी दे तो आपके प्रस्ताविक संविधान में न्यायपालिका 72 से 89 तक न्यायपालिका के दायित्वों का कहीं उल्लेख नहीं। राजनीति पर तो आपने महज मंथन कर परिवार से राजनीतिक ढांचा खड़ा करने का विचार दिया, परन्तु न्याय प्रणाली जैसे महत्वपूर्ण निकाय को पुराने ढेर का ही रहने दिया जबकि सस्ता, जल्दी, सुलभ न्याय हेतू गॉव स्तर से न्याय का ढांचा बनना चाहिए जो लोक स्वराज्य की मूल भावना का ज्यादा नजदीक हो। वर्तमान में न्यायपालिका एक बोझ जैसी स्थिति में दिखाई देती है। जॉच, आरोप में रही कमियों को प्रशासन पुलिस पर डालकर कोई जिम्मेदारी वहन नहीं करती जब न्याय प्रदान करना प्रशासन पुलिस व न्याय प्रणाली तीनों निकायों का संयुक्त दायित्व है।

(च)प्रश्न–3कृत्रिम ऊर्जा सस्ती होने, श्रमशोषक अंक 118,119 में पूंजीवाद साम्यवाद और श्रमवाद पर क्रमशः पृष्ठ 6 व 12 से 18 मुद्दे कुछ हेर–फेर कर उठाए गए हैं। किसी विषय वस्तु के दो पक्ष होते हैं। एक सिद्धान्त दूसरा व्यवहार। कृत्रिम ऊर्जा में महंगी होने पर पक्ष विपक्ष में विचार आते रहे हैं। गरीब लोगों पर इसका प्रभाव न पड़ने के पक्ष में बहुमत भी हो, परन्तु वर्तमान परिस्थिति में जहॉ आज पशुधन खेती का अभाव बड़े क्षेत्र में है। गरीब किसान भी जुताई, बुवाई किराये से कराता है। बैल नहीं रखता चूंकि बैल रखना महंगा पड़ता है। ऐसा सर्वे में सामने आया। एक बात यह है कि किसान ऊर्जा बिजली, डीजल, पानी सस्ती न मॉगकर उपज के भाव लागत मूल्य की मॉग करें, परन्तु भाव तो बढ़ाना न बढ़ाना सरकार के हाथ में है। जब तक भाव लागत मूल्य के आधार पर नहीं मिलता तो ऊर्जा महंगी होने से किसान प्रभावित होता है और यह बात उठाने पर किसानों में आक्रोश की जैसी स्थिति तक सामने आयी। दूसरे भोजन बनाने हेतू गैस का दूसरा विकल्प न होने लकड़ी आज गैस से कई गुना महंगी है चूंकि

उपलब्धता कम है, चाहे कैरोसिन तेल है। जब तक खाना बनाने का विकल्प लोगों के सामने न हो सिद्धान्त सही होते भी व्यावहारिक नहीं और समाज व्यावहारिक को अपनाता है। सिद्धान्त से पेट नहीं भरता।

उत्तर — शिक्षा संविधान का विषय न होने से मैंने प्रस्तावित संविधान से इसे बाहर रखा है। शिक्षा व्यवस्था में राज्य का कोई हस्तक्षेप उचित नहीं। जब से शिक्षा व्यवस्था में राज्य का हस्तक्षेप हुआ तब से शिक्षा और श्रम के बीच दूरी बढ़ती चली गई।शिक्षा को राज्य का आश्रय मिला और श्रम की उपेक्षा होती चली गई। आज भी शिक्षित लोग शिक्षा पर अधिक मेहरबान दिखते रहते हैं, किन्तु श्रम उपेक्षित ही रह जाता है। हम लोगों ने श्रम की चिन्ता तो की है किन्तु शिक्षा को समाज के जिम्मे डाल दिया है। स्वामी दयानन्द जी ने जो शिक्षा व्यवस्था बताई है वह भी न राज्य का विषय है न संविधान का।

न्यायपालिका की कार्य प्रणाली क्या हो यह कानून का विषय तो है, किन्तु संविधान का नहीं। कठिनाई यह है कि हम सब प्रकार के कानूनों का भी संविधान में समावेश करना चाहते है और सामाजिक विषयों को भी उसी के साथ जोड़ना चाहते है। लोकतंत्र में व्यक्ति पर कानून का नियंत्रण होता है और कानूनों पर सरकार का। सरकार पर संसद का नियंत्रण होता है और संसद पर संविधान का। यहॉ तक तो सब कुछ ठीक–ठाक है, किन्तु संविधान पर समाज या समाज द्वारा इस हेतु बनाई गई विशेष व्यवस्था का नियंत्रण होना चाहिए, किन्तु हमारे देश के नेताओं ने संविधान को संसद के अधीन करके या तो भूल कर दी या घपला कर दिया। जब संसद स्वयं ही संविधान के नियंत्रण में है तो संविधान पर संसद का नियंत्रण कैसे हो सकता है। यही कारण है कि साठ वर्ष बाद भी हम समाज, संविधान, संसद, राज्य और कानून का अन्तर नहीं समझ पाते और सबको कहीं न कहीं जोड़ दिया करते है।

आप कृषि और कृत्रिम ऊर्जा पर भी विचार व्यक्त किए है। भारत में जो भी आर्थिक समस्याऍ बढ़ रही हैं उन सबका सिर्फ एक ही कारण है कि कृत्रिम ऊर्जा का मोह हमसे नहीं छूट रहा। कृत्रिम ऊर्जा की खपत बढ़ने से विदेशों से डीजल, पेट्रोल आयात करना पड़ता है जिसके बदले में हम अनेक उपयोग वस्तुऍ निर्यात करते हैं। डीजल, पेट्रोल जितना पर्यावरण दूषित करते हैं उसके शुद्धिकरण के लिए भी हमें विशेष प्रयत्न करने पड़ते हैं। इसी तरह उत्पादन क्षेत्र में जो मानवीय ऊर्जा या पशु ऊर्जा कृषि उत्पादन करती थी वह भी अब उत्पादन से बाहर हो गई है। देश में दो संस्कृतियॉ दो विपरीत दिशाओं में सक्रिय है। **(1)**सुविधा की संस्कृति **(2)**श्रम की संस्कृति। सुविधा की संस्कृति पर लगातार विस्तार हो रहा है और श्रम की संस्कृति की उपेक्षा हो रही है। कृषि में अब भी अपेक्षाकृत अधिक मानवीय या पशु ऊर्जा का उपयोग है। मैने चालीस वर्ष पूर्व भी घोषित किया था और आज भी कह रहा हूॅ कि जब तक श्रमजीवी, ग्रामीण उद्योग, गरीब और मूल उत्पादक को कृत्रिम ऊर्जा में भारी मूल्य वृद्धि करके संरक्षण नहीं दिया जायेगा। तब तक सब प्रकार की समस्याऍ बढ़ती ही जायेगी। कम्प्युटर या सस्ता आवागमन खेती नहीं कर सकते ये तो खेती की व्यवस्था ही कर सकते हैं। यदि टेलीफोन का रेट दो गुना करके सब प्रकार के कृषि उत्पादों पर से टैक्स हटा दे तो यह साधारण सी बात

आप क्यों नही समझ पाते आपकी उर्वर कलम बड़े–बड़े वैज्ञानिक और अर्थशास्त्रियों के उदाहरण तो देती रहती है, किन्तु रसोई गैस पर सब्सिडी और साईकिल पर टैक्स की तुलना करने में चुप ही क्यों रहती है। श्रम ओर ग्रामीण उधोग कृषि की धुरी है, किन्तु श्रम और ग्रामीण उद्योगों को समाप्त करके कम्प्युटर से खेती की योजना का परिणाम जो हो रहा है वही होगा। मैं स्पष्ट कर दूँ कि चाहे आप कुछ भी कर लें, किन्तु जब तक कृत्रिम ऊर्जा की भारी मूल्य वृद्धि करके श्रम को प्रोत्साहन नहीं होगा तब तक कोई समाधान संभव नहीं है।

आपने सरकार की कृषि ऋण माफी योजना में उत्तर दक्षिण का असंतुलन खोज निकाला यह तो बहुत ही आश्चर्य की बात है। उत्तर भारतीयों की आय बीस रूपया और दक्षिण की करोड़ों रूपया लिखकर आपने एक नई खोज प्रस्तुत की है। लगता है कि आप अब किसी राष्ट्रीय स्तर के राजनैतिक दल के पदाधिकारी बन गये हैं तभी तो ऐसे –ऐसे विध्वंसक तर्क आपके दिमाग में उठ रहे हैं। आपने प्रभाष जोशी जी का संदर्भ देकर यह बात कहीं है। मैं आश्वस्त हूँ कि प्रभाष जी ऐसी बे–सिर पैर की बात कह ही नही सकते। आप उनके कथन का विस्तृत विवरण भेजेंगे तो समझ में आएगा, किन्तु आपको भी तो सोचना चाहिए कि आपके कथन में कितनी सच्चाई है और आपका कथन कितना जनहित में है? आप एक प्रबुद्ध साथी हैं। राजनैतिक उद्धेश्यों के लिए बे–सिर पैर के विध्वंसक तर्क आपकी छवि को नुकसान कर सकते हैं।

मेरा आपसे निवेदन है कि ज्ञानतत्व में लिखते समय यदि सतर्क रहेंगे तो अच्छा होगा ।

(छ)स्वदेशी समाचार

दिनांक उन्नीस बीस अप्रैल को स्वदेशी जागरणमंच की ओर से श्री गोविन्दाचार्य जी और श्री मुरलीधर जी राव के आमंत्रण पर एक सम्मेलन सम्पन्न हुआ। सम्मेलन में आयोजकों के अतिरिक्त श्री जार्ज फर्नाडीस, रामबहादुर जी राय, उमा भारती जी, मदन दास देवी, एस0गुरूमूर्ति जी, सुरेश सोनी जी सहित करीब तीन सौ प्रमुख लोग शामिल हुए। चर्चा का मुख्य विषय यह था कि वर्तमान सत्ता केन्द्रों के विकल्प के रूप में नये सत्ता समीकरण किस तरह बनें। श्री रामबहादूर जी राय ने देशी राजनीति के संबंध में एक प्रस्ताव की रूपरेखा प्रस्तुत की जिसका प्रारूप इस प्रकार है :–देशी राजनीति के तर्क से एक अर्थ यह निकलता है कि भारत में विदेशी राजनीति ही चल रही है। बहुत हद तक सही है।

यह बड़ा भारी भ्रम है कि 1947 में सत्ता का हस्तांतरण हुआ। सच यह है कि सम्राज्यवादी सत्ता की निरंतरता बनी हुई है इसके रूप बदल गए हैं।

सत्ता हस्तांतरण तो तब माना जाएगा जब आम आदमी के हाथ में वास्तविक सत्ता होगी। अभी तो वह मात्र वोटर है। जब और जिस दिन आम आदमी को सत्ता प्राप्त होगी वहॉ से देशी राजनीति का प्रस्तान बिन्दु शुरू होगा। इस समय तक उसका पायंत भी नही रख गया है।

मौजूदा राजनीति को जॉचने, परखने और समझने के कई संदर्भ उपलब्ध हैं। फिलहाल दो संदर्भ पर गौर करें –

पहला आजादी के बाद जिस तरह हड़बड़ी में संविधान बनाने की रस्म पूरी की गई।

दूसरा – उस संविधान की वह चित्रकारी जिसे नंदलाल बोस ने बनाया, जिसमें भारत के इतिहास की एक झलक है। हमारी परम्परा, मूल मान्यताएॅ और जीवन के प्रति नजरिया उन चित्रों में उभर आया है।

हमारे संविधान की एक पृष्ठभूमि है और उसका विकास क्रम है। वह इस प्रकार है –

(1)1600–1765 (2)1765–1858(3)1858–1919(4)1919–1947(5)1947–1950

यह विकास क्रम की साम्राज्यवादी सत्ता की निरन्तरता को बनाए रखे हुए है।

हालांकि कैबिनेट मिशन की योजना में नवम्बर 1946 में संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव हुआ, लेकिन स्वतंत्रता अधिनियम के बाद 1947 में संविधान सभा संप्रभु हो गई।

लेकिन पुरानी संविधान सभा ही काम करती रही थी।

संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसम्बर,1946 को हुई।

13 दिसम्बर, 1946 को संविधान के हेतु और उद्धेश्यों का प्रस्ताव पेश हुआ।

अगस्त 1947 में संविधान का प्रारूप सामने आया।

यह कहीं लिखा हुआ नहीं मिलता, लेकिन मौखिक जानकारी में है कि सविधान का प्रारूप लेकर जवाहर लाल नेहरू, सरदार पटेल और डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद जब महात्मा गॉधी के पास गए तो उन्होंने उसे पलट कर देखने के बाद कहा कि इसमें गॉव और पंचायत का कहीं कोई जिक्र नहीं है, जिसका कांग्रेस वादा करती रही है।

इसके बाद ही उन्होंने 21 दिसम्बर 1947 को हरिजन में लिखा कि ''मुझे यह मान्य करना होगा कि मैं संविधान सभा की कार्यवाही समझ नहीं पाया हूॅ ..... (वृतान्त बताता है)की सूचित संविधान में पंचायतें और विकेन्द्रीकरण का उल्लेख नहीं है। हमारी स्वतंत्रता में साधारण आदमी की आवाज को पूरा महत्व मिलना चाहिए। इस कसौटी पर यह कमी हो गई है। इसके प्रति अविलम्ब ध्यान देना आवश्यक है। पंचायतों के पास जितनी अधिक सत्ता होगी, उतना ही लोगों की आवाज में बल होगा''।

संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने गॉव और पंचायत को संशोधित प्रारूप में शामिल करने के लिए विचारार्थ पहले ही रख दिया था। संविधान के संशोधित प्रारूप में भी गॉव का जिक्र नहीं था। वह प्रारूप 4 नवम्बर 1948 को संविधान सभा में रखा गया।

संविधान के प्रारूप पर 4 नवम्बर से बहस प्रारम्भ हुई। उस समय विवाद का मुद्दा यह था कि आजाद भारत की राजनीतिक संरचना में गॉव की उपेक्षा कर दी गई है।

इस बहस से यह उजागर हुआ कि सात सदस्यों में सिर्फ डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने ही अकेले संविधान का प्रारूप बनाया है।

डॉ0 अम्बेडकर ने अपना मत साफ–साफ रखा कि ''मुझे इस बात की खुशी है कि संविधान के प्रारूप में गॉव शब्द को छोड़ दिया गया है और व्यक्ति को इकाई बनाया गया है। ''संविधान सभा के ज्यादातर सदस्यों ने इस पर अपने–अपने एतराज जताए। उसके बाद एक संशोधन पेश हुआ। संविधान सभा के सदस्यों को आशंका थी कि डॉ0 अम्बेडकर उसे स्वीकार नहीं करेंगे। लोगों को बहुत अचम्भा हुआ जब उन्होंने सदन की भावना देख कर कहा कि मैं यह संशोधन स्वीकार कर रहा हूँ। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने एक लोकतांत्रिक उदाहरण प्रस्तुत किया।

तब कहीं जाकर संविधान में अनुच्छेद 40 का समावेश किया जा सका। फिर भी यह सवाल उठता ही है कि क्या उससे गॉव आधारित राजनीतिक प्रणाली पैदा हो सकी?

इस संबंध में 22 नवम्बर, 1948 को दिया गया टी0प्रकाशम के भाषण का यह अंश महत्वपूर्ण है जो मौजूदा राजनीति के मूल दोष की ओर संकेत करता है। ''डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने पंचायत राज्य को समग्र संविधान का आधार बनाने के पक्ष में मत प्रकट किया है और कुछ दिनों से हम उस कार्य को पूरा करने के लिए प्रयासरत है .....संविधान के परामर्शदाता श्री बी0एन0 राव ने इस संदर्भ में सहानुभूति प्रदर्शित की, परन्तु उन्होंने ध्यान आकर्षित किया कि संविधान का आधार परिवर्तित करने के प्रयास में अधिक विलम्ब हो गया है, क्योंकि हम बहुत आगे निकल गये हैं। मैं भी इस बात से सहमत हूँ कि यदि कोई भूल हुई है तो वह हमसे हुई है, हम पूरे सतर्क नहीं रहे और इस विषय को समय पर सदन के सामने प्रस्तुत नहीं कर पाए। इतने विलम्ब से यह विषय सदन के सामने आने से संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में डॉ0अम्बेडकर उसको स्वीकार करेंगे, ऐसी आशा मुझे नहीं थी ..... ग्रामीण इकाई को संविधान का वास्तविक आधार नहीं बना पाने के परिणाम स्वरूप गंभीर स्थिति पैदा हुई । पूर्ण अवलोकन के बाद मानना पड़ेगा कि यह ऐसी संरचना है जो शिखर से आरम्भ होकर नींव तक जाती है। डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने सूचित किया कि(संविधान का)'' ढांचा नींव से आरम्भ होकर ऊपर की ओर जाना चाहिए''।

मौजूदा राजनीति का पिरामिड उल्टा ही बना हुआ है। क्योंकि जिस संविधान से यह राजनीतिक संरचना निकली है उसमें यही संभव है।

इस संविधान को शांति निकेतन के चित्रकार नन्दलाल बोस ने कला और इतिहास के चित्रों से सजाया। संविधान की मूल प्रति में मोहन जोदड़ो ,वैदिक, रामायण और महाभारत कालीन चित्र हैं। इनमें एक चित्र राम की लंका पर विजय और सीता का उद्धार को दिखाता है। अन्य चित्रों में बुद्धके जीवन की झांकी है, महावीर के जीवन की झांकी है। सम्राट अशोक के बौद्ध प्रचार के चित्र हैं। गुप्तकालीन कला एक चित्र है । विक्रमादित्य के राजदरबार का एक दृश्य नालन्दा विश्वविधालय का है। भागीरथ का तप और गंगा का अवतरण का एक चित्र है। अकबर का चित्र और उसकी पृष्ठभूमि में मुगलकालीन वास्तुकला है। शिवाजी और गुरू गोविन्द सिंह के चित्र हैं। टीपू सुल्तान और लक्ष्मीबाई के अलावा स्वतंत्रता संग्राम में महात्मा गांधी का चित्र है। एक स्थान पर बापू को नोआखली के दंगाग्रस्त क्षेत्र का दौरा करते हुए दिखाया गया है। हिमालय, रेगिस्तान और महासागर के प्राकृतिक चित्रण के अलावा उन क्रांतिकारियों को दिखाया गया है जो आजादी के लिए देश से बाहर रह कर लड़ रहे थे। जैसे –नेताजी सुभाष चन्द्र बोस। संविधान की मूल प्रति पर डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद सहित 280 से ज्यादा सदस्यों के हस्ताक्षर है।

मौजूदा राजनीतिक व्यवस्था की विसंगतियॉ

1. हमारे संविधान से जिस तरह की राजनीति, शिक्षा, अर्थव्यवस्था, उद्योग ,विज्ञान,तकनीक, सूचनातंत्र आदि निकलते हैं उसमें जनोन्मुखी विकास संभव नहीं है। इनसे मध्यवर्ग निकलेगा। हिंसा निकलेगी। भारी विषमता पैदा होगी । सामंती लोकतंत्र निकलेगा जैसा कि आज है। किसान आत्महत्या के लिए मजबूर होगा।
2. हमारे देश में अमीर और गरीब की आमदनी में एक करोड़ गुना का फर्क है ।
3. राजग के शासन में देश में नौ खरबपति थे। वे बढ़कर 2006 में 36 हुए और 2008 में खरबपतियों की संख्या 53 हो गई है। वही अब तक हजारों किसान आत्महत्या कर चुके है।
4. चौदहवी लोकसभा में 126 सदस्य अपराधी पृष्ठभूमि के हैं। जाहिर है कि राजनीति में अपराध और धन का बोलबाला बढ़ा है।
5. राजनीति और प्रशासन में भ्रष्टाचार तो आम बात मानी जाती है। इस समय न्यायपालिका भी इनसे कम भ्रष्ट नहीं हैं। ये कुछ उदाहरण है। यह सूची लम्बी हो सकती हैं।

(ज)देसी राजनीति का एजेंडा –

1. संविधान की सजावट में जो चित्रांकन नन्दलाल बोस ने कई साल की मेहनत से किये उसे संवैधानिक मान्यता मिलनी चाहिए।
2. बीते साठ सालों के अनुभवों के आधार पर संविधान की समीक्षा हो।
   उसके लिए नई संविधान सभा बने। इसके लिए ये कारण बताए जा सकते है।

(क) संविधान में अर्तराष्ट्रीय संधियों की संसद से पुष्टि का प्रावधान न होने के कारण डब्ल्यू0टी0ओ0 या परमाणु करार जैसे मसलों पर जनभावना और राष्ट्रीय हित की सरकार उपेक्षा कर दे रही है।

(ख) संघीय ढांचे को फिर से परिभाषित करने की जरूरत है

(ग) संविधान में केन्द्र और राज्य की सूची ही सत्ता के विकेन्द्रीकरण के लिए पर्याप्त नहीं है। जिला और पंचायत की सूची भी जरूरी हो गई है।

(घ) राज्यों के पुनगर्ठन के बारे में नए मापदण्ड अपनाने की जरूरत है।

हाल–फिलहाल में जो छोटे राज्य बनाए गए वे घोषित उद्धेश्य की कसौटी पर खरे नहीं उतरे हैं। इस लिए यह विषय गंभीर प्रश्न खड़े कर रहा है।

(ड़) साधारण मतदाता को दो नए अधिकार से सशक्त करने की जरूरत है। पहला –प्रतिनिधि वापसी का अधिकार, दूसरा उम्मीदवार को खारिज करने का अधिकार।

(च) स्थानीय स्वशासन की शहर और गॉव में जो संवैधानिक व्यवस्था की गई है वह राजनीतिक प्रदूषण का कारण बन गई है। पंचायत प्रणाली का सपना धरा रह गया है। इसलिए वास्तविक पंचायत प्रणाली लागू कराने के लिए देसी जड़ों को टटोलना होगा।

(छ) जल, जंगल, जमीन, ऊपज और अन्य उत्पादनों पर पहला हक किसका हो, इसका निर्धारण जरूरी हो गया है।

(ज) खाद्यान्न की वितरण प्रणाली को आमूल बदलने की जरूरत है।

(झ) जो सामाजिक सुरक्षा गॉव–देहात में पेशेगत समूहों को उपलब्ध थी उसकी गारंटी मिलनी चाहिए।

(ट) चुनाव प्रणाली में इस तरह संशोधन हो कि पेशेगत समूहों का प्रतिनिधि सुनिश्चित किया जा सके।

देसी राजनीति के सूत्र :–

1. इसकी खोज होनी चाहिए और बताया जाना चाहिए कि ऊॅचे वादे के साथ सत्ता में जो – जो पहुंचे वे राह से क्यों भटक गए। उस वादे का क्या हुआ जिसमें भारत को विश्व गुरू के पद पर बैठाया जाना था।
2. क्यों हमारे नेता, पुरोहित, धर्माचार्य और समाजसेवक लोगों की निगाहों से गिरते जा रहे है? वे अपने आदर का स्थान खो रहे है। क्या यह व्यक्तिगत आचरण का प्रश्न है या समूची व्यवस्था से जुड़ा हुआ है?
3. जिस उपभोक्ता संस्कृति को छाने दिया जा रहा है या समूची व्यवस्था से जुड़ा हुआ है?
4. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एक सार्थक सामाजिक उद्धेश्य को पूरा करने की बौद्धिक प्रक्रिया मानी गई थी। वह क्यों सत्ता का सस्ता हथियार बन गया।

5. साधारण आदमी में सभ्यता के सूत्र हैं। उन्हें संविधान में शामिल किया जाए। इसलिए यह निर्धारित हो कि साधारण नागरिक को सत्तावन बनाने में रूकावटे क्या–क्या हैं, उन्हें दूर किया जाए।

6. देसी राजनीति वह है जिससे स्वराज कायम हो। हर व्यक्ति स्वामी हो, शासित नहीं हो।

7. देसी राजनीति में 20 फीसदी का ही बोल –बाला है। जिसमें 83 हजार व्यक्ति पूरी अर्थव्यवस्था को नियंत्रित कर रहे हैं।

8. राष्ट्रीय हित में फैसले हों और गुलामी के चिन्ह निरन्तर मिटते जाएं।

9. देसी राजनीति और जनोन्मुखी विकास एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इन्हें अलग–अलग नहीं किया जा सकता।

10. विकास की शक्ल को देसी राजनीति तय करेगी।

11. जनोन्मुखी, विकास में हम किन जन की बात करना चाहते है यह सुनिश्चित होना चाहिए। उसकी पहचान हो। यह तय हो कि वह किस सामाजिक आर्थिक ग्रुप में है। सीधी सी बात यह है कि सबसे निचले पायदान पर जो खड़ा है वही जन है।

12. जनोन्मुखी विकास अगर गॉव देहात से होना है तो पहले वह संकट विकास के मौजूदा मॉडल से पैदा हुआ है। एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में खाद्यान्न का संकट पूरी संरचना के अन्तरविरोध को प्रकट करता है।

13. भारत को सामूहिक चेतना देसी राजनीति में प्रकट होनी चाहिए। विचार हो कि यह कैसे संभव होगा? इस समय देश पश्चिम के प्रभाव में ऐतिहासिक चेतना और आधुनिकता से संचालित है। जिसका प्रभाव समाज में दिखने दिखाने की संस्कृति के रूप में सामने आ रहा है। मर्यादा की संस्कृति के विपरीत है।

14. राजघाट पर बनी समाधियॉ और ऐसे अनेक उदाहरणों से समझा जा सकता है कि हमने अपना रिवाज छोड़ दिया है। इतिहास की चेतना और उसके लिए मकबरे बनाने के फेर में पड़ गए हैं।

15. जिस भूमण्डलीकरण को हमने अपनाया है वह आर्थिक और राजीनतिक है। उसी भूमण्डलीकरण की राजनीति से भारत घसीटा जा रहा है।

16. यह संभव नहीं है कि चलती गाड़ी की मरम्मत की जाए। इसलिए गतिकेन्द्रित और गति प्रताड़ित राजनीति का अंतर करना हमको सीखना होगा।

17. इसलिए ऐसी राजनीति प्रणाली की संरचना का विचार करना होगा जो हमारी जरूरतों और लक्ष्यों को पूरा कर सकें, जो सांस्कृतिक और आध्यात्मिक भूमण्डलीकरण को बढ़ा सके।

18. और अन्त में एक स्पष्टीकरण। व्यक्ति और व्यवस्था में बदलाव का ऐसा एजेण्डा ही देसी राजनीति है जो कुरीतियों को दूर कर सके। वास्तविक लोकतंत्र ला सके और साधारण आदमी की खुशहाली का जरिया बने। जहॉ किसी भी प्रकार का शोषण न हो। जिसमें मौजूदा सामंती लोकतंत्र के लिए कोई जगह न हो।

किन्तु धीरे–धीरे सम्मेलन राजनीति छटपटाहट की भेंट चढ़ गया। देसी राजनीति की चर्चा कम और स्वदेशी अर्थनीति स्वदेशी समाज व्यवस्था की चर्चा जोर पकड़ने लगी। मेरा यह अनुभव है कि जब राजनेता सत्ता के लिए छटपटाना शुरू करता है तो वह स्वदेशी राजनीतिक व्यवस्था की चर्चा को किनारे करके आर्थिक सामाजिक समस्याओं पर चर्चा को केन्द्रित करना चाहता है। इक्कीस अप्रैल को स्वामी अग्निवेश जी के आमंत्रण पर दूसरे समूह की भी बैठक हुई जिसमें मेधा पाटकर जी, ब्रह्मदेव जी शर्मा, कुलदीन नैय्यर जी, बनवारी लाल ली शर्मा, सुरेन्द्र मोहन जी आदि अनेक बड़े नेता मौजूद थे जिन्हें वृन्दावन बैठक से भिन्न गुट का माना जाता है। उस बैठक में भी राजनैतिक सत्ता समीकरण में अपनी भूमिका की तलाश की प्रत्यक्ष छटपटाहट दिखी। दोनों ही सम्मेलनों ने आगे और सम्मेलन करने की घोषणा के साथ बैठक समाप्त की। दोनों ही पक्षों ने राजनीतिक संभावनाओं को टटोलने की कोशिश की है। वैसे मुझे खुशी है कि किसी सम्मेलन में देशी राजनीति का इतना स्पष्ट विश्लेषण पहली बार हुआ है। यदि वृन्दावन सम्मेलन राजनीतिक उठा–पटक से दूर रहकर इस विषय पर आगे बढ़ पाता तो बहुत अच्छा होता।